मृच्छकटिकम पर आधारित फिल्म उत्सव में व्यक्त समाज

डॉ. विधु खरे दास*
kharedasv@gmail.com

सारांश

साहित्य और सिनेमा दोनों समाज के प्रभावी तत्त्व हैं, लेकिन उनकी प्रकृति भिन्न है। साहित्य वैयक्तिक अनुभव पर आधारित होता है, जबकि सिनेमा एक सामूहिक अनुभव है। व्यवसायिकता और अव्यवसायिकता के द्वंद्व के कारण साहित्य पर आधारित व्यावसायिक फिल्में प्रचलित नहीं रहीं। हालांकि, समानांतर सिनेमा ने इस दिशा में प्रयास किपए हैं।

1984 में बनी फिल्म उत्सव संस्कृत साहित्य मृच्छकटिकम और दरिद्र चारुदत्तम पर आधारित थी। इस फिल्म का निर्देशन गिरीश कर्नाड और निर्माण शशि कपूर ने किया था। फिल्म समाज में स्त्रियों की स्थिति, सत्ता का भ्रष्टाचार और वर्गभेद जैसे विषयों को उठाती है। नायिका वसंतसेना एक गणिका होते हुए भी कुलीनता की आकांक्षा रखती है, जबकि नायक चारुदत्त एक निर्धन ब्राह्मण व्यापारी है। फिल्म में तत्कालीन समाज की संरचना, राजनीतिक क्रांति और स्त्री विमर्श को उकेरा गया है।

फिल्म में कामुकता को प्रमुखता देने से साहित्यिक संवेदना प्रभावित हुई। वात्स्यायन और कामशास्त्र के शोध को व्यावसायिक दृष्टि से अधिक उभारा गया, जिससे मूल प्रेम कथा की संवेदनशीलता कम हो गई। साहित्य और सिनेमा की अभिव्यक्ति में यह अंतर स्पष्ट होता है कि साहित्य सृजन है, जबकि फिल्म पुनर्रचना।

की शब्द - सामाजिक विसंगति, वर्ग भेद, जाति, सुरक्षा, राजनीति, व्यावसायिकता

साहित्य तथा सिनेमा दोनों को ही समाज का प्रभावकारी तत्व माना जाता है। सिनेमा सामूहिक परिघटना है तो साहित्य वैयक्तिक अनुभव का विषय है। दोनों विधाएं विमर्शों का केंद्र हैं तथा अपने समय का निरूपण करती हैं। सिनेमा प्रायः व्यावसायिक विधा है जबकि साहित्य को प्रायः अव्यावसायिक रूप में ग्रहण किया जाता है। व्यवसाय तथा अव्यवसाय की यह टकराहट सिनेमा तथा साहित्य के मध्य बनी रहती है क्योंकि दोनों विधाओं के मूल उद्देश्य ही विपरीत ध्रुवों पर स्थित हैं। यही कारण है कि हिंदी साहित्य पर आधारित फिल्मों का निर्माण व्यावसायिक सिनेमा में अधिक प्रचलित नहीं रहा है और न ही यह सफल रहा है। समानांतर सिनेमा की धारा ने अवश्य ही इस प्रकार के प्रयास किये हैं। साहित्य के संस्कार लेकर व्यावसायिक फिल्मों का निर्माण एक दुरूह कार्य है। साहित्य में निरूपित समाज व्यावसायिक सिनेमा में निरूपित समाज के स्वरूप से भिन्न होता है क्योंकि सिनेमा लार्जर दैन लाइफ़ के स्वरूप में होता है , फिर भी सिनेमा साहित्य का आश्रय लेता रहता है। "साहित्य पढ़ते समय हम सिर्फ मनोरंजन की उम्मीद नहीं रखते हैं पर सिनेमा देखते समय हम

* **प्रदर्शनकारी कला विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

मनोरंजन की एक बड़ी उम्मीद रखते हैं।"[1] व्यवसाय और मनोरंजन आधारित भारतीय फिल्म उद्योग में संस्कृत साहित्य पर आधारित हिंदी फिल्मों का निर्माण करने का साहस बहुत कम ही लोगों ने किया है। उत्सव का निर्माण हिंदी फिल्म उद्योग में एक साहसिक कदम के तौर पर याद किया जाता है। इतने बहुस्तरीय नाट्यालेख को स्क्रीन पर ले आना चुनौती भरी प्रक्रिया रही होगी। उत्सव फिल्म १९८४ में बनी थी। इसके निर्देशक गिरीश कर्नाड हैं तथा निर्माता शशि कपूर हैं। भास कृत दरिद्र चारुदत्तम तथा शूद्रक कृत मृच्छकटिकम पर आधारित उत्सव में तत्कालीन समाज के चित्रण का प्रयास किया गया है। नाटक एक प्रेम कथा की पृष्ठभूमि में चल रही राजनैतिक क्रांति की कथा कहता है। शूद्रक ने अपनी कृति में राजा रानी जैसे पात्रों को प्रत्यक्ष स्थान नहीं दिया है। समाज के अन्य वर्गों का चित्रण इसमें अधिक किया गया है। उत्सव में भी रचनात्मक छूट के नाम पर राजा आदि पात्रों को नहीं दिखाया गया है। उत्सव का समाज वेश्या, जुआरी, चोर, कंगाल व्यापारी, स्त्री का पीछा करने वाले पुरुष, दास आदि से निर्मित है। लगभग दो हज़ार वर्ष पहले रचित इस नाटक में व्यक्त सामाजिक स्थितियां आज की स्थितियों से भी मेल खाती हैं अथवा वे किसी भिन्न स्तर पर निरूपित की गयी हैं यह अध्ययन का विषय है।

उत्सव नारी चेतना को व्यक्त करने वाला सिनेमा है। यह स्त्रियों की समाज में सुरक्षा के विषय को भी उठाता है। वसंतसेना जैसी शक्तिशाली गणिका भी सुरक्षित नहीं है। भृष्ट सत्ताधारी पुरुष शक्तिशाली स्त्रियों पर भी अपना नियंत्रण चाहते हैं। वे उसे प्रेम करने का अधिकार भी नहीं देना चाहते हैं। इस प्रकार से स्त्री संबंधी विमर्श को भी इसमें स्थान दिया गया है। इसमें सभी स्त्रियों को आभूषणों से युक्त दिखाया गया है। आभूषण का समाज में अत्यधिक महत्त्व था। इसका मुख्य पात्र एक गणिका है। संस्कृत साहित्य में गणिका का अपना एक विशेष स्थान होता है। गणिका में श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। नायिका के रूप में वसंतसेना है जो कि राज्य की मुख्य गणिका है। अतः समाज की संरचना में एक अलग स्थान रखने वाला पात्र ही इस फिल्म की मुख्य नायिका है तथा पूरी फिल्म वसंतसेना के आस पास ही घूमती है। इसके अतिरिक्त नायक की पत्नी भी एक प्रमुख पात्र है। पत्नी धूता का चित्रण एक आम घरेलू गृहिणी की भांति किया गया है। वह अपने मायके आती जाती रहती है। वह इतनी उदार है कि अपने पति की गणिका प्रेमिका को भी स्वीकार कर लेती है। स्त्री का यह एक ऐसा निरूपण है जिसकी कल्पना आज के समाज में नहीं की जा सकती है। इतनी सहृदय पत्नी वो भी जिसका पति कंगाल हो चुका हो, जिसका वैभव जा चुका हो, जो एक बच्चे की मां भी हो वह अपने अधिकार क्षेत्र में एक वेश्या के प्रवेश को स्वीकार कर लेती है।

वसंतसेना एक अत्यंत सौम्य, धनी तथा विदुषी गणिका है फिर भी वह एक विवाहित निर्धन ब्राह्मण से प्रेम करती है। वह विवाह करके कुलीन स्त्री के समान ही सम्मान पाना चाहती है। वसंतसेना के घर का चित्रण एक गृहस्थ के घर के चित्रण से सर्वथा भिन्न है। गणिकाओं के आवास की संरचना को दिखाने की लिए अत्यंत ही उन्मुक्त तथा स्वच्छंद वातावरण का निर्माण किया गया है। गणिकाओं की वेश भूषा, उनका आपसी वार्तालाप तथा उनका व्यवसाय एक खुले समाज को दर्शाता है। सबसे आश्चर्यजनक उपस्थिति वहां पर ऋषि वात्स्यायन की है। देह व्यापार को वैज्ञानिकता प्रदान करने का उनका शोधपरक दृष्टिकोण कामुकता पूर्ण मनोरंजन का निर्माण करता है। यह फिल्म की व्यावसायिक बाध्यता को भी दर्शाता है। ऐसे वातावरण में वसंतसेना तथा चारुदत्त का विशुद्ध प्रेम पनपता है। फिल्म में प्रेम एक चिंतन के रूप में प्रस्तुत होता है। इन सामाजिक जटिलताओं की प्रस्तुति इस फिल्म को आज के समय से भी जोड़ देती है। एक गणिका का एक निर्धन ब्राह्मण से प्रेम तथा उसकी पत्नी द्वारा उसका स्वीकारा जाना उस समय के समाज की मनःस्थिति को

प्रस्तुत करती है। दूसरी ओर वसंतसेना स्वतंत्र भी नहीं है। गणिकालय में उसके ऊपर किस प्रकार के दबाव है यह भी स्पष्ट होता है। उसकी स्वतंत्रता भी स्पष्ट होती है जब वह अपनी दासी को मुक्त करके उसे एक कुलवधू का जीवन जीने के लिए स्वतंत्र कर देती है। "मृच्छकटिक काल में दुर्लभ वधूरूप सौभाग्य पाने के लिए गणिका और वेश्याएं बड़ी उत्सुक रहती थीं और इसके लिए सर्वस्व न्यौछावर करने को आतुर रहती थीं। मदनिका और वसंतसेना ने अपने जीवन की सफलता का उद्देश्य ही इसे माना और इसकी प्राप्ति के बाद ही चैन लिया।"[2] इस प्रकार की सामाजिक विसंगतियों का रेखांकन महत्वपूर्ण पक्ष है। अतः यह तो स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ उन्मुक्त जीवन को छोड़कर गृहस्थ जीवन को अधिक महत्त्व देती थीं तथा विवाह व्यवस्था को सम्मान प्राप्त था।

राजा के श्यालक संस्थानक को लम्पट, धूर्त तथा मूर्ख दिखाया गया है। वह गलियों में रात के अँधेरे में वसंतसेना का पीछा करता है। इस तरह से छिपकर स्त्रियों पर अत्याचार का चित्रण समसामयिक प्रतीत होता है। स्त्रियों को अपने उपभोग की वस्तु समझने की प्रवृत्ति उस समाज में प्रचलित थी। उत्सव का नायक चारुदत्त एक व्यवसाई है परन्तु वह कंगाल हो चुका है। वह कलाप्रेमी है। संगीत का ज्ञाता है। निर्धनता में भी संतुष्ट है इसीलिए धनी गणिका से प्रेम करने का साहस कर पाता है। चारुदत्त का पुत्र वर्गभेद का सामना करता है। धनी तथा संपन्न घरों के बच्चे उसके साथ नहीं खेलते क्योंकि उसके पास मिटटी की गाड़ी है। बच्चे के अंदर इससे हीन भावना उत्पन्न होती है। धन का महत्त्व किस प्रकार से बच्चों के मध्य भी अपनी उपस्थिति बनाकर रखता है उस समाज में यह स्पष्ट हो जाता है। चारुदत्त तथा उसके सहायक के बीच भी यह चर्चा होती है जिसमें धन का महत्त्व रेखांकित होता है। धन, सत्ता तथा शक्ति का सम्बन्ध इस फिल्म में स्पष्टता के साथ रेखांकित होता है। कथानक में आभूषण एक रंग युक्ति की तरह प्रयुक्त होते हैं। वसंतसेना के आभूषण फिल्म में घटनाचक्र का निर्माण करते हैं। गहनों का रखना, खोना तथा पुनः मिलना धन के महत्त्व को रेखांकित करते हैं। पूरी फिल्म में एक चोर शर्विलक भी अपनी उपस्थिति को महत्वपूर्ण बनाता है। यह चोर राजनैतिक क्रांति में भी सहायक होता है। अतः निम्न वर्ग के पात्र की राजनीति में सशक्त भूमिका स्थापित होती है। यही चोर अपनी गणिका प्रेमिका को मुक्त कराकर उसे सम्माननीय भी बनाता है। अधम कार्य करने वाला यह पात्र एक उचित पुरुष का आदर्श भी स्थापित करता है जबकि वह मुख्य नायक भी नहीं है। यह चोर शर्विलक कलाकार भी है तथा सेंध लगाते समय वह सौन्दर्य का पालन करता है। चोरी, सेंधमारी, बेईमानी, कपट आदि से युक्त पात्र समाज की विभिन्न छवियों को प्रस्तुत करते हैं इसी प्रकार से चम्पीवाला, जुआरी जैसे पात्र भी राजनैतिक गतिविधियों में सक्रिय दिखाई देते हैं। कुछ कर्म आधारित जातियों का रेखांकन भी है फिल्म में जैसे ब्राह्मण, चम्पी वाला नाई, गुलाम, वेश्या, चंडाल आदि। राजनैतिक प्रतिद्वंदिता तथा उसके फलस्वरूप उपजी क्रांति, फिल्म में प्रेम कथा के साथ-साथ निरूपित की गयी है। भ्रष्ट राजा तथा उसके परिजनों से त्रस्त जनता आखिरकार विद्रोह में सहभागिता करती है। इस विद्रोह में समाज के हर वर्ग के लोग सह्योग करते हैं। यहाँ तक कि नवविवाहित गणिका मदनिका भी सहायक सिद्ध होती है। सत्ता पक्ष के द्वारा जनता को प्रताड़ित किया जाता था तो जनता ही क्रांति का आरम्भ करती है। इसी उलझन के मध्य में वसंतोत्सव का धूम धाम से आयोजन भी होता है। इसमें कामुकता का प्रदर्शन भी किया गया है। लगभग सभी गणिकायें कामुक वस्त्रों से सज्जित हैं इस आयोजन में। सुरा के सेवन के भी दृश्य हैं।

फिल्म में तत्कालीन न्याय व्यवस्था को भी दर्शाया गया है। सत्ता के पक्ष में रहकर गलत कार्य करने से परिस्थितियाँ उन्हें रोकती हैं और अंत में न्याय की ही विजय होती है फिल्म का अंत सुखान्त है। सब कुछ अंत में सुखद होता है। पूरी फिल्म में प्रेम प्रसंग तथा कामुकता अधिक रेखांकित होती है। यह एक समाज की कथा

है परन्तु वाचिक में पात्र कुछ अलग टोन में बात करते हैं जिससे एकरूपता टूट जाती है। मूल कृति से कुछ छूट लेना तो ठीक रहता है परन्तु यदि यह छूट ठीक से शिल्प में समाहित न हो तो रस भंग की स्थिति बन जाती है। उत्सव फिल्म में दर्शाए गए समाज की भी यही स्थिति बनती है। वसंतसेना की भूमिका के अतिरिक्त सभी पात्र अपनी-अपनी परिस्थितियों में अटपटे ही प्रतीत होते हैं। “फिल्म में आकर साहित्य की संवेदना या तो बदलती है या सतही हो जाती है। फिल्मों के साहित्यिक रूप को पढ़ने और उनपर बनी फिल्मों को देखने से पाठक रूपी दर्शक संतुष्ट नहीं होता। कहीं व्यावसायिकता इस कदर हावी होती है कि कृति की संवेदना नाम मात्र रह जाती है।”[3]

निर्देशक ने केवल व्यावसायिकता हेतु वात्स्यायन तथा काम शास्त्र के शोध को इस कथानक में प्रमुखता दी है जबकि मूलकथा एक विशुद्ध प्रेम कहानी है जिसकी पृष्ठभूमि में राजनैतिक उथल-पुथल तथा समाज के अन्य वर्गों के क्रिया-कलापों को बुना गया है। “फिल्म और साहित्य दोनों रचनात्मक प्रतिभा की मांग करते हैं। अंतर सिर्फ इतना है कि साहित्य सृजन है और फिल्म उसका पुनरसृजन।”[4] शास्त्रीय संस्कृत नाटक के फिल्मांकन में यह चूक गिरीश कर्नाड से उत्सव फिल्म में हो गयी है। व्यावसायिकता के लिए क्लासिकल कृति में इस स्तर की कामुकता डालने का कोई भी औचित्य नहीं है। रस भंग क्लासिकल का उद्देश्य नहीं होता। विशेषकर तत्कालीन समाज का निरूपण करने में अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। संस्कृत नाटक आनंदवादी थे।” भारतीय आचार्यों से आग्रह है कि नाटक के लेखन और प्रदर्शन दोनों ही स्तरों पर नाटक की मूल चेतना, रस की प्रतिष्ठा होनी ही चाहिए।”[5] अतः साहित्य के माध्यम से स्क्रीन के माध्यम तक जाने में एक बड़ा अंतराल आता है। इस अंतराल को सावधानी से भरा जाना चाहिए था।

सन्दर्भ :-

1. कुंदे, पुरुषोत्तम. (सं.). (2014). *साहित्य और सिनेमा.* गाज़ियाबाद : साहित्य संस्थान. पृ. 57
2. द्विवेदी, डॉ. शालग्राम. (na). *मृच्छकटिकम : शास्त्रीय, सामाजिक एवं राजनैतिक अध्ययन.* वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन. पृ. 171
3. मिसाल, डॉ. चंद्रकांत. (सं.). (2014). पुरुषोत्तम कुंदे, *साहित्य और सिनेमा.* गाज़ियाबाद : साहित्य संस्थान. पृ. 126
4. अग्रवाल, विजय. (1993). *सिनेमा और समाज.* दिल्ली : सस्ता साहित्य प्रकाशन. पृ. 78
5. मिश्र, डॉ विश्वनाथ. (2003). *भारतीय और पाश्चात्य नाट्य सिद्धांत.* अहमदाबाद: कुसुम प्रकाशन. पृ. 13